हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में- "कान्हड़ा"

हिमांशु शेखर
शोधार्थी, संगीत-भवन,
विश्व-भारती विश्वविद्यालय,
शांतिनिकेतन,पश्चिम बंगाल

सारांश:

वर्तमान में संगीत के गुणिजनों द्वारा "कान्हड़ा" के कई प्रकारों को गाते-बजाते सुना जाता हैं। यह एक ऐसा कर्णप्रिय 'राग' है जो श्रोताओं को बहुत जल्दी आकर्षित कर लेता है। अतः इस शोध-पत्र के माध्यम से, "कान्हड़ा" और उस से संबंधित अन्य रागों के संदर्भ में, हमारे संगीत-शस्त्रों में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर उत्पत्ति, विकाश तथा शास्त्रीय संगीत में इसकी महत्ता के साथ वर्तमान समय में इसकी लोकप्रियता पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य-अंश:

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में सामान्य गणितीय आधार से तो अनगिनत रागों की उत्पत्ति हो सकती हैं। परंतु वे राग-रचना के सभी नियमों के मापदंडों पर पूर्ण रूप से खरे नहीं उतर पाने के कारण गाए जाने योग्य नहीं समझे जाते। वर्तमान में लगभग डेढ़ सौ से दो सौ राग हीं हैं, जिन्हें हमारे हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के उस्तादों और पंडितों द्वारा गाया और बजाया जाता है। इन्हीं रागों में एक राग है – "दरबारी कान्हाड़ा"। यह एक ऐसा राग है, जो शास्त्रीय संगीत के गायकों-वादकों की पहली पसंद तो होता हीं है, श्रोताओं द्वारा भी सबसे ज्यादा पसंद किए जाने वाले रागों की श्रेणी में आता है। इस राग के संदर्भ में यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि यह राग उन श्रेणियों में आता है, जो संगीत की प्रत्येक शैली अर्थात शुद्ध-शास्त्रीय-संगीत, लोक-संगीत, मिश्रित-संगीत, फिल्मी संगीत अथवा संगीत के साथ मिश्रण और साधारण से साधारण संगीत में यह अपनी बराबरी की पकड़ को बरकरार रखने में एक अद्भुत राग है।

इस राग की उत्पत्ति के शास्त्रवत संदर्भ और प्रमाण तथा उसके विकास के बारे में अध्ययन करें तो हमें भिन्न-भिन्न शास्त्रों में शास्त्रकारों के द्वारा इसके विभिन्न प्रकार और भिन्न-भिन्न नाम देखने को मिलते हैं। प्रोफेसर ओ सी गांगुली अपनी किताब "Ragas and Raginis" में लिखते हैं- *"प्राचीन कर्नाट देश हाथियों के शिकार के लिए प्रसिद्ध था। उस समय के शाही प्रचलन के अनुसार राजा अपने सेवकों, सिपाहियों तथा गायकों के साथ शिकार के लिए जाता था। ऐसा कहा जाता है कि हाथी को मारते समय एक विशेष प्रकार की धुन गाई जाती थी जिसमें दो "भावों" का समावेश होता था। एक तो मरते हुए हाथी का करुण-स्वर तथा दूसरा, शिकार में सफल होने से लोगों की विजय के कारण हर्ष"*[1] ।

राग-नामकरण-प्रमाण:

कई तथ्यों और प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि हमारा शास्त्रीय संगीत का आधार लोक संगीत हीं है, जिसकी उत्पति अलग-अलग स्थानों तथा प्रदेशों और भूभागो की प्रचलित संगीत से हुआ है और उसी लोक संगीत के परिवर्तित और नियमवद्ध स्वरुप को "शास्त्रीय संगीत" का दर्जा प्राप्त है। इसलिए वर्तमान में हमारे शास्त्रीय संगीत में कई ऐसे राग हैं, जो आज भी अपने लोकधुन वाली छवि लिए

[1] . हिंदुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास पृष्ठ-27

हुए हैं। राग- कान्हड़ा के बारे में भी शास्त्रकारों का ऐसा ही विचार है। हमारे संगीत शस्त्रों में राग- कान्हड़ा का प्राचीन नाम "कर्णाट" अथवा "कर्णाटी" मिलता है, जो इसके "कर्णाट"[i] क्षेत्र से उत्पति का परिचय देता है। "कर्णाटी" शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा रचित नाट्यशास्त्र की टीका- अभिनव भारती में मिलता है :

कर्णाटी बन्धनिर्वीणा चित्रकर्मणि वा भवेत ।१२।[2]

वैसे अभिनव गुप्त यहाँ सिर्फ़ इस शब्द का उल्लेख किया है। परंतु यहां से कर्णाटी के विस्तृत स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। इसके बाद मिथिला (कर्णाट वंश) के शासक और ग्रंथकार- नान्यदेव अपने ग्रंथ- "भरत-भाष्य" में इस राग के नाम- कर्णाटवराटिका और इसमे लगने वाले स्वर के बारे में उल्लेख करते हैं :

षडज-न्यास-ग्रहा-धाँसा ध (ता) रा मन्द्र मध्यमा।

सम-स्वरा य सम्पूर्णा (सा) कर्णाटवराटिका ।।[3] *(२४३)*

नान्यदेव द्वारा उल्लेखित तथ्यों को हीं मतंग मुनि अपने ग्रंथ-बृहद्देशी में उल्लेखित करते हुए, इसका नाम "कर्णाटवराटिकाभिहिता" कहते हैं। आदि के बारे में बताते हैं :

धाँसा धैवत-तारा षडज-न्यास-ग्रह च सम्पूर्णा।

मध्य मन्द्रा कविभि: कर्णाटवराटिकाभिहिता ।।[4] *(२४२)*

दोनों ग्रंथकारों ने जिस तरह से इस राग का वर्णन किया है उससे यह साबित होता है कि यह दोनों- *कर्णाटवराटिका तथा कर्णाटी* अलग नहीं है बल्कि एक ही है। जैसे आजकल राग-दरबारी कन्हाड़ा को हीं 'दरबारी' भी बोल लेते हैं। मतंग मुनि के बाद के कई ग्रंथकारों ने नन्यदेव और मतंग मुनि द्वारा कही गई बातों को हीं थोड़े बहुत अन्य नामों के साथ इस राग को अपने ग्रंथों में स्थान दिया है। पंडित शारंगदेव द्वारा रचित – "संगीत रत्नाकर" में इस राग के बारे में कोई विशेष वर्णन नहीं मिलता है, बल्कि उन्होंने जो अपने रागांग-वर्गीकरण किए हैं, उन्हीं में 'कर्णाट' को भी शामिल कर लिया है। सोमेश्वर ने अपने द्वारा रचित ग्रंथ- "मानसोल्लास" में पूर्व में इस राग को मिले संज्ञा – 'कर्णाट' का कोई विशेष वर्णन तो नहीं किया है बल्कि उन्होंने 'कर्णाट-बंगाल' और 'कर्णाटवराटी' का वर्णन किया है :

षडजादिस्वर सम्पूर्ण पंचमेन च दुर्बला।

सा कर्णाटवराटी स्यादीजत्संप्रतिपादिक ।।[5]

सोमेश्वर के पुत्र राजा जगदेक मल्ल ने – 'संगीत चूड़ामणि' में उसी कर्णाट को "कर्णाटगौड़" की संज्ञा दी है।

'कर्णाट' के बारे में जिन बातों का उल्लेख जगदेक मल्ल ने किया है, उन्हीं बातों का उल्लेख महाराजा हरिपाल ने अपने ग्रंथ "संगीत सुधाकर" में भी है। "संगीत समयसार" के ग्रंथकार पार्श्वदेव ने अपने इस ग्रंथ में 'संगीत-चूड़ामणि' का हीं अनुसरण किया है और उन्होंने भी इस राग- 'कर्नाट' को "कर्णाटगौड़" की संज्ञा दी है। उत्तर भारत के संगीत ग्रंथों में इस राग के नामकरण में मुख्य रूप से तीन ग्रंथों का नाम आता है। पहला, राजा मानसिंह तोमर कृत 'मानकुतूहल'। दुसरा, तानसेन कृत 'रागमाला' और तीसरा फकीरुल्ल्ह कृत 'रागदर्पण'।

विदेशी आक्रमण के बाद के विभाजित भारत- उत्तर तथा दक्षिण में, ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर उत्तर भारत के पहले विद्वान हैं जिन्होंने इसके नाम के साथ इसके प्रकारों की भी व्याख्या की है[6]। यहां उन्होंने वर्तमान में प्रचलित नाम कान्हड़ा को "कानरा" कहा है और इसके "पांच" प्रकार बताएं हैं। इस से पहले किसी भी ग्रन्थ में इसके प्रकारों की व्याख्या नहीं की गई है। इन्हीं चीजों का उल्लेख

[2] .अभिनव-भारती, पृ०-73

[3] भरतभाष्य, पृ०-294

[4] . भरतभाष्य, पृ०-294

[5] . मानसोल्लास गीत प्रकरण, संगीत पत्रिका, मार्च 1961, पृ०- 30

[6] . मानसिंह तोमर, मानकुतूहल (अध्याय-संकीर्ण रागाध्याय),पृ०- 10(अ)

तानसेन ने भी (अल्प अंतर के साथ) किया है और उसे "कान्हारा" कहा है[7]। अंत में, फकीरुल्ल्ह कृत- "रागदर्पण" में उल्लेखित नाम आता है – "कान्हाड़ा" ; यहीं नाम आज हमारे संगीत में प्रचलन में है। परंतु, ज्ञात रहे कि फकीरउल्ला ने राग में लगने वाले स्वरों के बारे में स्पष्ट व्याख्या नहीं किए हैं। इस ग्रंथ में 'कान्हाड़ा' के निम्नलिखित पांच प्रकार बताए गए हैं :

1. शुद्ध कान्हाड़ा।
2. शुद्ध कान्हाड़ा में धनाश्री मिलाने से बगेश्वरी हो जाता हैं।
3. कान्हाड़ा को मल्हार से मिलाए से अड़ाना हो जाता है।
4. अड़ाना को कान्हाड़ा से मिलाए तो अठाना हो जाता है।
5. कान्हाड़ा को धवलश्री से मिलाए तो मंगलष्टक अर्थात पूरिया हो जाता है।

सादिक अली ने अपने ग्रंथ- "सरमाय इशरत" में कान्हाड़ा के कई प्रकार होने की बात कही है और इसे "कान्हरा" कहा है ; उन्हीं कई प्रकारों में से अठारह नामों का उल्लेख भी किया है। परंतु, उन रागों में प्रयुक्त होने वाले स्वरों आदि की व्याख्या उन्होंने नहीं किया है। उनके अठारह रागों के नाम हैं- शुद्ध कान्हरा, नायकी कान्हरा, शहाना कान्हरा, अड़ाना कान्हरा, सिखरनी कान्हरा, कील कान्हरा, मुद्रिक कान्हरा, बागेश्री कान्हरा, गोसीया कान्हरा, बसंती कान्हरा, खमाजी कान्हरा, भैरवी कान्हरा, जीजावंती कान्हरा, दरबारी कान्हरा, आसार कान्हरा, कर्णाटी कान्हरा, दौलती कान्हरा और मांगलिक कान्हरा[8]।

<u>शास्त्रों में इस राग के स्वर तथा उनका गायन-समय :</u>

रागों को स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक श्रेणियों में बांटने वाले विद्वान ग्रंथकार नारद ने "गीत मकरंद" में "कर्णाट" को एक "पुरुष-राग" बताया है और इसका गायन समय- "सूर्यांश" भी कहा है। परंतु, उन्होंने राग में लगने वाले स्वरों के बारे में किसी प्रकार की विस्तृत जानकारी नहीं दी है। दक्षिण भारतीय ग्रंथकार पंडित रामामात्य ने पहली बार अपने पूर्वर्ती ग्रंथकारों की अपेक्षा, इस राग के स्वरूप के बारे में विस्तार से अपने ग्रंथ "स्वरमेल-कलानिधि" में व्याख्या किए हैं। परंतु, उन्होंने इसे (राग-कर्णाट को) "कन्ननडगौल" मेल (स्वर संगति: सा <u>ग</u> ग म प ध <u>नि</u> सां) से उत्पन्न राग कन्ननडगौल कहा है[9]। साथ ही उन्होंने इस राग को संपूर्ण जाति का मांगते हुए यही बताया है कि कभी कभार कुछ गुणिजन आरोह में मध्यम को वर्जित कर देते हैं। उन्होंने इस राग में धैवत निषाद को क्रमशः ग्रह तथा अंश स्वर मानते हुए इसका गायन समय- दिन का अंतिम प्रहर बताया है और उन्होंने बीस "उत्तम-वर्ग" के रागों में इसकी गणना करते हुए यह बताया है कि, यह राग उत्कल देश (वर्तमान उड़िसा) के लोगों का सबसे प्रिय राग है। जहां एक ग्रंथ में पंडित रामामात्या इस राग को संपूर्ण जाति का मानते हैं वही "राग-सागर" में इसे षडज-जाति का, मध्य रात्रि में गाया जाने वाला 'मिश्र' राग बताया गया है।

कई अन्य ग्रंथों में इस रात के नामकरण, स्वर-संगतियाँ तथा प्रकार आदि मिलते हैं। इन ग्रंथों के नाम है- पुंडरीक विट्ठल द्वारा रचित ग्रंथ "सद्राग-चंद्रोदय", पंडित सोमनाथ कृत "राग-बिवोध", पंडित दामोदर कृत "संगीत-दर्पण", पंडित श्री देवनारायण देव कृत "हृदयकौतुक", लोचन कृत "राग-तरंगिणी" तथा महाराजा सवाई प्रताप सिंह कृत "संगीत-सार" आदि।

वर्तमान समय में राग- कान्हड़ा का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ कृष्णधन बैनर्जी द्वारा रचित-"गीत-सूत्रसार" को माना जाता है। इस ग्रंथ में श्री कृष्णधन बैनर्जी ने भी कन्हाड़े के अठारह प्रकार हीं बताए हैं, जिनको उन्होंने – 'शुद्ध' तथा 'मिश्र' कन्हाड़े की संज्ञा दी है। श्री

---

[7] . संगीत-सम्राट तानसेन, जीवनी और रचनाएँ, पृ०- 192

[8] . सरमाय इशरत, पृ०- 78

[9] . संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन पृष्ठ-97

कृष्णधन बैनर्जी और सादिक अली के कन्हाड़े की संख्या तो समान है परंतु, उनके नामों में भिन्नता पाई जाती है। वैसे उन्होंने सत्रह प्रकार हीं बताएं हैं, परंतु वर्तमान में प्रचलित "नायकी कन्हाड़ा" का नाम भी उन्हीं के द्वारा बताया गया माना जाता है। जिसका उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। गीत-सूत्रसार में कन्हाड़े के प्रकार हैं: 1. शुद्ध- कान्हाड़ा :- दरबारी कान्हाड़ा, मुद्रिक कान्हाड़ा, हौसेनी कान्हाड़ा, सुहा कान्हाड़ा, सुघराई कान्हाड़ा, अड़ाना, सहाना, बागेश्री, तथा गारा। 2. मिश्र- कान्हाड़ा :- नाग ध्वनि, टंकी कान्हाड़ा, काफी कान्हाड़ा, कोलाहल कान्हाड़ा, मंगल कान्हाड़ा, श्याम कान्हाड़ा, मियाँ की जयजयवंती।[10] भातखंडे जी इस राग के संदर्भ में कहते हैं- *"हमारे यहाँ गायक कान्हड़ा के अठारह प्रकार मानते हैं- दरबारी, नायकी, हुसेनी, कौंसी, मुद्रिक, सूहा, सुघराई, अड़ाना, सहाना, बागेश्री, गारा, काफी, जयजयवन्ती, नागध्वनि, टंकी, कोलाहल, मंगल और श्याम कान्हड़ा। इनमें से आठ- सूहा, सुघराई, दरबारी, अड़ाना, बागेश्री, नायकी, कौंसी तथा शहाना को स्वतंत्र कान्हड़ा कहा गया है।"*[11]

संदर्भ-सूची:

1. बैनर्जी,श्री कृष्णधन, गीत सूत्रसार अनुवादिका-डॉ० लिपिका दासगुप्त,पिल्ग्रिम पब्लिशिंग हाऊस, वाराणसी, 2004
2. भातखंडे, पंडित विष्णु नारायण, संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, संगीत-कार्यालय,हाथरस,2015
3. द्विवेदी, श्री श्रीनारायण,(संपादक-श्री हरिहरनिवास द्विवेदी), मानसिंह और मानकुतूहल,ग्वालियर, 1953
4. दयाल, प्रभु मित्तल,संगीत-सम्राट तानसेन-जीवनी और रचनाएँ, साहित्य संस्थान, मथुरा,1960
5. डॉ० पाठक, सुनंदा, हिंदुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास,राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2016
6. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल, अभिनव-भारती (टीका-नाट्यशास्त्र)
7. पुण्डरीक, चैतन्य (संपादक), नन्य-देव: भरत-भाष्य, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, मध्यप्रदेश,1961
8. बसंत, (संपादक- लक्ष्मीनारायण गर्ग), संगीत-विशारद,संगीत-कार्यालय,हाथरस, 1981/2017 .

[10] . गीत सूत्रसार,पृ०- 51

[11] . भारतीय संगीत-शास्त्र, भाग-4, पृ०- 530